(कृति संधान)

तानी-दर्शन की विश्व-दृष्टि : जिमी-जमा की आँखें सब देख रही हैं...

देवराज

मीमांसापरक-लेखन एक विलक्षण विद्या है। पूरी तरह आभ्यंतरीकृत समर्पण की मन:स्थिति प्राप्त करके पाठ के साथ जुड़ना उसके द्वार को खटखटाने के लिए अनिवार्य है। संयोग ऐसा बने कि द्वार खुल जाए, तब विचार, विवेचन, विश्लेषण, पाठ के बाहरी-भीतरी अर्थों का संकलन, भाषा की खोज और पुनर्पाठ-संघटन की बारी आती है। मीमांसक की प्रतिभा, पूर्व के अध्ययन से अर्जित ज्ञान, काल और इतिहास का विवेक तथा वैयक्तिक-दृष्टि-बोध इसका मार्ग निर्मित करने वाले मुख्य कारक हैं। इस मार्ग पर सावधानी पूर्वक चलते हुए मीमांसक ललित-मुक्त-पाठ की सीमाओं का साक्षात्कार भी करता है और पहले से गठे-गठाए पाठ की सीमाओं का भी। यह आवश्यक नहीं कि पाठ की सीमाओं तक पहुँच जाने भर से काम बन जाए। इसके उलट एक बड़ा संकट भी चुनौती देते हुए सामने आकर खड़ा हो सकता है। वह यह, कि अध्ययन के लिए दिया गया पाठ स्वयं मीमांसक को उसकी सीमाओं के साक्षात्कार के लिए विवश कर सकता है। यदि ये सीमाएँ विरूप और संकुचित हुईं, तो पाठ मीमांसक को अपने अयोग्य ठहराते हुए दूर जाकर विश्राम भी करने लग सकता है। यह परंपरागत भारतीय मीमांसा का ही नहीं, आधुनिक वैश्विक समालोचना का संकट भी है। मुझे इस संकट का सामना कई बार करना पड़ा है- अपनी निर्बलताओं से पराजित होने की सीमा तक भी।

ईमानदारी से स्वीकार करता हूँ कि जोराम यालाम नाबाम की कृति 'तानी कथाएँ' के पाठ ने भी मेरे साथ रात-दिन युद्ध करके मुझे अखाड़े के बाहर धकेलने का प्रयास किया। इस क्षण भी मैं उसे जीत लेने वाले वीर के रूप में नहीं, मात्र पराजय से बचने में लगे योद्धा के रूप में उसके विरुद्ध अपने तीरों का प्रयोग कर रहा हूँ। अपनी निर्बलता का कारण भी आपसे साझा कर लूँ। दरअसल, तानी कथाएँ पुस्तक 'तानी आदिवासी समाज' की संस्कृति के कार्म-कांड पक्ष पर लिखी गई न होकर तानी संस्कृति की दार्शनिक अवधारणाओं, उनकी व्याख्या और उनके भीतर बसे सत्य की व्यावहारिक प्रासंगिकता पर केंद्रित पुस्तक है। दूसरे, इसका मूल-पाठ न तो प्रचलित संस्कृति-ग्रंथों से संग्रहीत किया गया है और न ही एकांत में ज्ञान की साधना में धूनी रमाए विद्वान अकादमीशियनों द्वारा किए गए शोध-कार्य से। यह सीधे उस तानी-लोक से संचित पाठ है, जिसकी पीढ़ियाँ अनादि काल से प्रकृति के साहचर्य में सहज जीवन व्यतीत कर रही हैं, जिसे साक्षर होने की अपेक्षा अनुभव से अर्जित ज्ञान प्राप्त करने और उसे संजोए रखने की अधिक चिंता है तथा जो तमाम तरह के आधुनिक समाजार्थिक दबावों के बावजूद आदिवासियत को जीते रहने में अपना और समाज का कल्याण मानता है।

इस आदिवासी जीवन-पाठ को यूनानी 'फिलॉसफी' से नहीं, बल्कि भारतीय दृष्टि के 'दर्शन' से समझना कहीं अधिक न्यायसंगत है। यहाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हमारी सहायता करते हैं। वे अपने एक वक्तव्य में कहते हैं- "क्या है, फिलॉसफी? वह है, 'क्वेस्ट ऑफ नॉलेज' सत्य की, ज्ञान की जिज्ञासा। आप खोजते चले जाओगे, इसके बाद क्या हुआ? इसके बाद क्या हुआ? तर्क द्वारा; बुद्धि द्वारा जहाँ तक पहुँच गए और आपने सिद्धांत निर्धारित कर लिया कि हमारा सिद्धांत यह है। तो, यह है फिलॉसफी। लेकिन हिंदुस्तान में जिस किसी ने लिखा, वह दर्शन लिखा। दर्शन माने देखना। पहले वह देख लेता है कि सत्य क्या है? इसके बाद उसकी स्थापना

करता है। यह उलटा रास्ता है। भले ही उलटा रास्ता हो, लेकिन पहले देख लिया और फिर स्थापना की, तो वह दर्शन हुआ।"[1] आचार्य द्विवेदी ने दर्शन के संदर्भ में- 'देखने' को 'योग सिद्ध दृष्टि' कहा है। अपने इसी वक्तव्य में वे आगे कहते हैं कि "योग सब शास्त्रों में प्रमाण माना गया है। इसीलिए जब वो कहते हैं कि हम जिसकी व्याख्या कर रहे हैं; उस सत्य को पहले हमने देखा है। सत्य को देखने से पहले अनेक तपस्याओं के भीतर से गुजरे हैं। इस प्रकार योग सिद्ध दृष्टि से जो सत्य देखा है, वह दर्शन है।"[2]

इस योग सिद्ध दृष्टि को सरल रूप में समझना हो, तो हमारे पास भारतीय 'आगम शास्त्र' हैं, जिनमें से तैत्तरियोपनिषद में भृगु ऋषि की कथा आती है। उनके संबंध में अनेक कथाओं में से एक इस प्रकार है- "... एक बार भृगु के मन में ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने पिता से पूछा कि ब्रह्म क्या है? वरुण ने अन्न, जीव, मन, वाणी आदि को ब्रह्म की उपलब्धि के द्वारा बताया और कहा कि जीव ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है। उसे तप से जाना जा सकता है। वरुण से प्रेरणा प्राप्त करके भृगु तपस्या करने लगे। कुछ समय बाद भृगु ने अनुभव किया कि "संभवत: 'अन्न' ही ब्रह्म है।" क्योंकि प्राणी अन्न से उत्पन्न होकर अन्न में लीन हो जाता है। पिता के सम्मुख शंका प्रस्तुत करने पर उन्हें अपने मत की सहमति नहीं मिली। वे पुन: तपस्या करने लगे। इसी प्रकार उन्होंने क्रमश: प्राण, मन, विज्ञान स्वरूप जीवात्मा को ब्रह्म माना, किंतु हर बार पिता के सम्मुख पहुँचने पर उन्हें यही उपदेश मिला कि ब्रह्म को समझने का साधन तप है, अत: हर बार वे पुन: तप में लीन हो गए। अंततोगत्वा उन्हें परब्रह्म का ज्ञान हुआ कि वह आनंद स्वरूप है तथा उनके मन में अन्य किसी प्रकार की जिज्ञासा शेष नहीं रही।"[3]

यहाँ इस कथा में से इतना रहस्य ही ग्राह्य है कि जड़ स्थूल से प्राण तत्त्व, प्राण तत्त्व से मनस्तत्व, मनस्तत्व से ज्ञान तत्त्व (जिसे विज्ञान तत्त्व कहा गया है) तथा ज्ञान तत्त्व से आनंद तत्त्व की उपलब्धि हुई। दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में इस उपलब्धि का मूल आधार निरंतर तपस्या के फलस्वरूप अर्जित योग सिद्ध दृष्टि है।

अब यह सोचने की बारी है कि जिस तानी आदिवासी दर्शन की प्रस्तुति और मीमांसा 'तानी कथाएँ' पुस्तक में है, उसमें प्राप्त सत्य तक पहुँचने के मार्ग का क्या स्वरूप रहा होगा, जिस पर चल कर आबोतानी और परवर्ती तानी पीढ़ियाँ आगे बढ़ी होंगी?

तानी कथाएँ पुस्तक के पाठ के भीतर पैठते हुए अनुभव होता है कि यह मार्ग निस्संदेह निरंतर प्रयोग और अनुभव के आधार पर सत्य को प्राप्त करने का मार्ग है। इसमें किए जाने वाले प्रयोग किसी औपचारिक प्रशिक्षण पर टिके हुए न होकर नैसर्गिक प्रतिभा और व्यावहारिक आवश्यकताओं पर टिके हुए हैं। इसी प्रकार प्रयोगों से अर्जित अनुभव संचित करके एक तरफ रख देने के लिए नहीं, बल्कि दैनंदिन जीवन का अनिवार्य अंग बनाने के लिए हैं। इन प्रयोगों और अनुभवों की मूल प्रेरणा प्रकृति की शक्तियों और पूर्वजों से मिलती है तथा वे दोनों ही मानव द्वारा अर्जित सत्य के वास्तविक परीक्षक भी हैं। इतना ही नहीं, वे दोनों मनुष्य की जीवन-यात्रा, उसके प्रयोगों और अनुभवों को लगातार देखते भी रहते हैं, जिससे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में स्वाभाविक अनुशासन बना रहता है। यह दार्शनिक जीवन-क्रम किसी भी सुनिश्चित धर्म-दर्शन के प्रारंभ होने के पहले से चला आ रहा है। कब प्रारंभ हुआ होगा, इसका उत्तर न इतिहासकारों के पास है, न समाजशास्त्रियों के, न अब तक हुए मानवविज्ञानियों के और न ही तानी कथाएँ पुस्तक की लेखिका के पास। कारण यह, कि आदिवासी जीवन-व्यवस्था ही इस सृष्टि की आदि और स्वाधीन जीवन-व्यवस्था है। समस्त नागर अथवा

अभिजात व्यवस्थाएँ उसके बाद समय-समय पर अस्तित्व में आईं और शास्त्र तथा ग्रंथ बनकर उनमें बंध गईं, ताकि उनका अनुशासन खंडित न हो। उधर आदिवासी व्यवस्था ने शास्त्राधारित जीवन को नहीं, प्रयोगों, अनुभवों और उनकी सीख के आधार पर विकसित परंपराओं के हाथों जीवन का परिचालन स्वीकार किया। इसमें प्रकृति उनकी और वे प्रकृति के अनिवार्य सहयात्री रहे। दोनों ही सहयात्री परस्पराश्रित, किंतु फिर भी स्वाधीन। हम जानते हैं कि प्रकृति स्वयं स्वाधीन है एवं स्वानुशासन में रहती है, वह न खुद कृत्रिम बंधनों में बंधती है और न ही किसी अन्य को बांध कर रखती है। यह आदिवासी जीवन-दर्शन को समझने का एक सूत्र है। स्पष्ट है कि किसी मीमांसक के लिए यह एक चुनौती भी है।

मुझे लगता है, आप मेरी निर्बलता की तह तक पहुँच गए होंगे।

पुस्तक के पाठ को समझने की पृष्ठभूमि :

तानी कथाएँ में जोराम यालाम नाबाम ने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना करते हुए कहा है- "किसी भी समाज को अपनी परंपराओं की जानकारी होनी चाहिए, उसके निहितार्थों का पता होना चाहिए। यह उस समाज की जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि से परिचित होने के लिए जरूरी है। उसके पीछे उसका अपना दर्शन हो सकता है।"[4] पहले इस स्थापना के दूसरे पक्ष-अर्थात जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि- को विचार का विषय बना कर आगे बढ़ना समीचीन प्रतीत होता है।

जीवन-दृष्टि मूलत: जीवन की चेतना से विकसित होती है। इसका यात्रा-प्रस्थान-बिंदु होता है व्यक्ति, और लक्ष्य समाज तथा अखिल विश्व। इसमें जड़ता के लिए कोई स्थान नहीं होता। न जीवन में जड़ता, न चेतना में और न दृष्टि में। नैरंतर्य, विकासशीलता, तार्किक निष्कर्षों के प्रति आग्रह, कार्य-कारण के पूर्वापर संबंधों के विवेक पर आधारित निर्णयों के प्रति सम्मान, परंपरा के प्रति आस्था आदि तत्त्व जीवन-दृष्टि का स्वरूप निर्धारित करते हैं।

विश्व-दृष्टि का स्रोत विश्व के प्रति चेतना है। इसका प्रारंभ विश्व के विवेकपूर्ण बोध से होता है। संपूर्ण प्रकृति, संपूर्ण वन्य-ग्राम्य-नागर जीवन, विश्व का ऐतिहासिक विकास-क्रम, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक और वैचारिक दशाएँ, कलाएँ, भाषाएँ, शिक्षा और साहित्य, प्रचलित राजनैतिक प्रणालियाँ और उनके साथ लोगों का संबंध, न्याय-व्यवस्था और न्याय की सुलभता, मानवाधिकारों के प्रति जनता का आग्रह एवं राज्य-सत्ताओं की नीतियाँ, स्वाधीनता के प्रति दृष्टिकोण, विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का विकास, कृषि, श्रम और जीवन-यापन की दशाएँ, जलवायु, पर्यावरण और ऊर्जा की चुनौतियाँ आदि विश्व-चेतना का निर्माण तथा विश्व-दृष्टि का विकास करने वाले प्रमुख तत्त्व हैं। इन्हीं से विश्व-मूल्य भी प्रभावित होते हैं। विश्व-दृष्टि विश्व-मूल्यों पर टिकी होती है।

विश्व-मूल्यों का अभिप्राय ऐसी सामान्य मान्यताएँ नहीं हैं, जिनका उद्देश्य संपूर्ण विश्व को एक समान नियमों के बल पर अनुशासित करना हो, बल्कि वे मान्यताएँ हैं, जो विश्व के सांस्कृतिक और प्राकृतिक वैविध्य का सम्मान करते हुए विश्व को अनुशासित करने वाली हों। इनके आधार पर बने नियम-कानूनों को विश्व भर के देशों द्वारा मान्य किए जाने तथा इन्हें अपने पर बाध्यकारी मान लेने के बाद ये वैश्विक-नियम अथवा विश्व-मूल्य का स्तर प्राप्त कर लेते हैं। जो देश किसी कारण इन्हें मानने को सहमत नहीं होते, वे भी इनके विरुद्ध आचरण के

लिए स्वतंत्र नहीं माने जाते और विश्व-बिरादरी राजनैतिक व कूटनीतिक प्रयास करती है कि वे वैश्विक-मूल्यों को स्वीकार करें।

विश्व-जीवन से संबंध रखने वाली मान्यताओं और विधि-निषेधों के दो वर्ग संभव हैं। एक वह वर्ग, जिसके अंतर्गत वे मान्यताएँ आती हैं, जो संपूर्ण विश्व समाज पर और सभी देशों की राज्य-सत्ताओं पर समान रूप से लागू हो सकती हैं। उदाहरण के लिए; जीने के अधिकार की सुनिश्चितता, सांस्कृतिक-वैविध्य की स्वीकृति, सभी देशों की संप्रभुता का सम्मान, किसी भी पक्ष द्वारा दूसरे के विरुद्ध युद्ध घोषित न करने पर सहमति, व्यापक विचार-विमर्श और सामान्य सहमति से अस्तित्व में आई विश्व-संस्थाओं के निर्णयों का सम्मान आदि। और, दूसरा वह वर्ग, जिसमें ऐसी मान्यताएँ आती हैं, जिनका संपूर्ण विश्व के लिए अनिवार्य प्रतीत होने के बावजूद, व्यवहार में आना आसान नहीं है। इसके कुछ कटु उदाहरण हमारी वैश्विक-चेतना को झकझोरने वाले हो सकते हैं; जैसे- लैंगिक समानता, कानून के समक्ष समानता, बाल-श्रम, समान नागरिक संहिता आदि। सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जटिलताओं के साथ ही विश्व के विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति एवं जनसांख्यिकी भी इनके सभी देशों में समान रूप से लागू होने में बाधा बनती दिखती है।

मूल्यों के ये दोनों ही वर्ग विश्व के सामाजिक जीवन की जटिलता की ओर ध्यान खींचते हैं और हमारी विश्व-दृष्टि को प्रभावित करते हैं। इसका एक निहितार्थ यह है (और वही उपर्युक्त विवेचन का मूल लक्ष्य भी है) कि सभ्यता, विज्ञान, शिक्षा, संचार-प्रौद्योगिकी की इतनी भारी वैश्विक प्रगति, संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी सर्व-सम्मत विश्व-संस्था की उपस्थिति तथा भूमंडलीकरण की स्थिति प्राप्त कर लेने के बावजूद-

- क्या हम किसी सामान्य विश्व-चेतना और उससे उद्भूत विश्व-दृष्टि का विकास कर पाए हैं?
- क्या हमने वैश्विक जटिलताओं से उत्पन्न संकटों के सामाजिक प्रभावों की समझ के संदर्भ में किसी वैचारिकी का विकास किया है?
- क्या हमने जीवन का वह मार्ग नहीं चुना है, जो विश्व-जनता के सदस्यों में से प्रत्येक को 'सांस्कृतिक-व्यक्ति-इकाई' के बदले, राजनैतिक शक्ति-संतुलन, शीतयुद्ध और बाजारवाद के असहनीय दबावों से घिरी 'दिशाहारा-व्यक्ति-इकाई' बनाता है?

अब लेखिका की स्थापना के पहले भाग पर विचार किया जा सकता है, जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि हमें अपने समाज की परंपराओं और उनके भीतर छिपे हुए अर्थ की जानकारी होनी चाहिए। इसके आधार पर ही यह जाना जा सकता है कि हमारी परंपराओं में विद्यमान जीवन-दृष्टि और विश्व-दृष्टि का क्या रूप है? यह स्थापना सामान्य रूप में 'अपनी जड़ों की ओर वापसी' का आह्वान लग सकती है, लेकिन ऐसा है नहीं। यह समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में 'अपनी सांस्कृतिक जड़ों से गहन संपृक्ति' का आह्वान है, जो एक विशेष स्थिति को प्राप्त करने से कहीं अधिक हममें से प्रत्येक के विश्व-चेतना से संपन्न होने की आधारभूत अनिवार्यता है।

हम विश्व को अपनी सामान्य चर्चा का विषय बना कर वैश्विक बन जाने का दावा नहीं कर सकते। यह केवल राजनीतिज्ञों का विलास हो सकता है। हमें वैश्विक होने के लिए भारी तप करना होगा- विश्व-नागरिक बन जाने के लिए तप। उसके लिए विश्व को अपने भीतर की पूरी सत्य-निष्ठा से अपनाना होगा, उसे अपने दैनिक

जीवन का अंग स्वीकार करना होगा, उसे आत्मीकृत कर लेना होगा- विश्व की समस्त विशेषताओं और विरूपताओं के साथ विश्व का आत्मीकृतीकरण।

लेकिन इसका उपाय क्या है? इसका एकमात्र उपाय एक ऐसा मार्ग खोजना है, जिसके अन्य मार्गों की भाँति ही स्वाभाविक रूप से दो किनारे हैं, किंतु उनकी अर्थ-निष्पत्ति भिन्न है। उस मार्ग का पहला किनारा हमें अपनी सांस्कृतिक जड़ों के बीच अपनी जगह बनाना, उन जड़ों में विद्यमान जीवन-परंपराओं और व्यवहार शैलियों का पुनर्संधान करना, उनमें से फूटती दार्शनिक पद्धतियों को पहचानना, उनके निहितार्थ तक पहुँचना और अंतत: अब तक जिये गए वैयक्तिक एवं सामुदायिक जीवन का मूल्यांकन करना सिखाता है और, दूसरा किनारा प्रकृति के समग्र संभार से जुड़ने के उपाय बताता है। यह संस्कृति और प्रकृति से एक साथ संवाद की स्थिति प्राप्त करने की अवस्था है, जिसे अर्जित किए बिना हम न स्थानीय हो सकते हैं, न राष्ट्रीय और न वैश्विक।

समाज और राष्ट्र के ही समान विश्व भी एक सांस्कृतिक इकाई है। वह असंख्य संस्कृति धाराओं और प्रकृति की विविधता के भीतर जीवंत रूप में विद्यमान समान जीवन-मूल्यों से बना है। इन्हीं समान जीवन-मूल्यों के साथ अनिवार्य रूप से अंतर्विरोध, संघर्ष और संकट भी विद्यमान हैं, लेकिन समान वैश्विक जीवन मूल्य उन्हें अपनी विवेकपूर्ण और सहिष्णु सामूहिक चेतना के बल पर निष्प्रभावी बनाते चलते हैं। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जैसे व्यक्ति, समाज और विश्व काल के निरंतर प्रवाह में चलते रहते हैं। यही कारण है कि संस्कृति और प्रकृति मुख्य हैं। राजनीति और अर्थनीति को उनके पीछे चलना चाहिए। जब से राजनीति और अर्थनीति को मुख्य माना जाना प्रारंभ हुआ है, तभी से तानाशाही, फासीवाद, असंतुलित और विनाशकारी दिशाओं की ओर धकेलने वाला विकास, जीवन पर संकट लाने वाले जलवायु और पर्यावरण से जुड़े परिवर्तन अपने-अपने प्रभाव दिखा रहे हैं।

तानी कथाएँ इसी ओर लौटने का आग्रह करने वाली रचना है। उसमें तानी आदिवासी समाज के अरुणाचल प्रदेश में निवास करने वाले आपातानी, न्यीशी, आदी, गालो और तागिन समुदाय की सांस्कृतिक परंपराओं, आध्यात्मिक-दर्शन, व्यावहारिक जीवन-दर्शन, स्वभाव, भाषा-तत्त्व आदि के आधार पर आधुनिक विश्व के लिए एक स्वस्थ विश्व-दृष्टि की खोज की गई है। यदि सामान्यीकृत करें, तो कहा जा सकता है कि यह दृष्टि भारत और विश्व के अन्य आदिवासी समुदायों के जीवन-दर्शन में भी विद्यमान हो सकती है। लेखिका कहीं भी इसका विरोध नहीं करती और न ही यह दावा करती है कि तानी आदिवासी जीवन-दर्शन से उद्भूत दृष्टि ही एकमात्र विश्व-दृष्टि है। वह मात्र एक वैकल्पिक विश्व-दृष्टि का दावा करती है, जो अन्य किसी आदिवासी समुदाय के जीवन-दर्शन में विद्यमान विश्व-दृष्टि के समांतर भी हो सकती है। निश्चय ही यह संस्कृति-विमर्श की स्वस्थ और लोकतांत्रिक प्रणाली है।

तानी दर्शन के मूलाधार पक्ष

जिमी-जमा :

"कहते हैं, प्रारंभ में कोई रंग अर्थात दृश्य नहीं था। समय का भी अस्तित्व नहीं था, क्योंकि रात और दिन बने ही नहीं थे। असीम अंधकार व्याप्त था। मात्र सन्नाटे की गूंज थी। तानी दर्शन में इस अवस्था को नाम दिया गया- जिमी-जमा। यह गर्भ है।"[5]

प्रकाश, काल और दिन-रात :

"असीम अंधकार में एक रोज जिमी-जमा ने अपनी असंख्य आँखें खोलीं। ये आँखें हैं- सूर्य, चंद्र और तारे। जिमी-जमा के आँखें खोलने से रौशनी का जन्म हुआ, समय अर्थात काल प्रारंभ हुआ तथा दिन और रात अस्तित्व में आए।"[6]

कोरियुम-कोल्ह/ कयूम केरो/ कोरियुम तानी/ कोलो तानी :

प्रकाश, काल, दिन-रात के जन्म की "इस अवस्था को 'कोरियुम-कोल्ह' अथवा 'कयूम-केरो' कहा गया, जिसे 'कोरियुम-तानी' या 'कोलो-तानी' भी कहा जाता है।

'कोरियुम' का अर्थ अंधकार और 'कोल्ह' का अर्थ प्रकाश है। इन दोनों शब्दों को एक साथ जोड़ कर भी प्रयोग किया जाता है, जो कि भविष्य के अर्थ में होता है- 'कूरियुम-कोल्ह' अर्थात आने वाला समय। इसमें 'कूरियम' का अर्थ है, परसों की रात। यह भूत के अर्थ में है। जबकि 'कोल्ह' का शब्दिक अर्थ है- बहुत पहले/प्राचीन/आने वाला कल या भविष्य। इस तरह अंधेरे और उजाले 'एक' के ही दो रूप हैं।"[7]

सूर्य :

"कहते हैं, सूरज चिर प्यासा है। सबको पैदा करता है और स्वयं ही सबको खा भी जाता है। इसकी गर्मी से धरती भी दो बार नष्ट हुई। जब तीसरी बार उत्पन्न हुई, तो वह द्रव रूप में थी। इस अवस्था को 'रुलूम-रल्ह' कहा गया, जिसका अर्थ है- 'जैलीनुमा आकृति'। वह कोई भी रूप अथवा आकार ले सकती थी। उसका सूरज ने स्पर्श किया। तब वह आहिस्ता-आहिस्ता बदलने लगी। वह सूरज के साथ तादात्म्य बिठाने में सफल हुई। इसे धरती और सूरज का विवाह माना जाता है।

सूरज माता है, क्योंकि उसका गुण माता का है, लेकिन स्वभाव पुरुष का है, अत: नाम रखा गया- दोंयी। 'दोंयी' शब्द पुरुषवाचक है। यही सूरज धरती के भीतर स्त्री स्वरूप 'आने दुग्नन' (माता अग्नि) के रूप में रहता है। भूकंप का आना 'आने दुग्नन' का करवट लेना माना जाता है। वस्तुत: सूरज सृजनकर्ता और संहारक, दोनों है।"[8]

चंद्रमा :

"... चाँद को 'पोलो' अथवा 'हाई' कहा गया है। जल को भी हाई कहा जाता है। वह जल को नियंत्रित करता है। सर्दियों में उसी को 'दक्का आने' अर्थात पैरों को अपनी ठंड से चीर देने वाली माता कहा जाता है। चाँद हमेशा आसमान में नहीं दिखता, इसलिए उसे पुरुष अर्थात पिता माना गया है, परंतु अपने गुणों के कारण उसके अदृश्य रूप को स्त्री माना गया है। उसका काम सूरज से अधिक है। वह पृथ्वी पर उपस्थित जीवन का पालन करता है।..."[9]

चंद्रमा की एक विशेष भूमिका :

"चाँद के ही इशारों पर पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े अपनी-अपनी आवाज और भाषा में मौसम की सूचना देते हैं- मुर्गा बाँग देकर सुबह होने की सूचना देता है। एक विशेष कीड़ा चिल्लाकर रात हो जाने का संकेत देता है। वह अपनी हलचलों से भूकंप इत्यादि के आने की सूचना भी देता है। कब धान के बीज मिट्टी में गिराए जाएँ, कब मड़ुआ के बीज बिखेरे जाएँ, कब खेतों के लिए जंगलों की कटाई की जाए अथवा कब धान रोपा जाए, ऐसे अनगिनत कामों के सही समय की सूचना वे ही तो चाँद की मदद से देते हैं।"[10]

धरती का अस्तित्व में आना और सूर्य की पाँच अवस्थाएँ :

"समय के अस्तित्व में आने के बाद धरती अस्तित्व में आई। इस पर जीवन के पनपने में बहुत समय लगा, क्योंकि सूरज ने पाँच बार अपना रूप बदला-

1. जीतर दोंयी- यह चरम गर्म था। यह जीवन नहीं दे सकता था। इसने प्रथम धरती को नष्ट कर दिया और अपनी ही गमी से स्वयं भी नष्ट हो गया।
2. जीयर दोंयी- यह भीतर से कुछ गर्म था, लेकिन तब भी इतना गर्म था कि कुछ समय बाद अपनी ही गर्मी से यह भी नष्ट हो गया।
3. जीकु दोंयी- यह जीतर और जीयर दोंयी से कुछ कोमल था, लेकिन यह भी जीवन के अनुकूल नहीं हो सका।

   यह कमी इसके नष्ट होने का कारण बनी। जिंदा रहने के लिए इसको जीवनदायिनी धरती की आवश्यकता थी, जिससे यह मिल नहीं पा रहा था।
4. जीगी दोंयी- इसमें प्रथम तीन सूर्यों से अधिक कोमलता थी, लेकिन धरती अभी भी इसके साथ विवाह को तैयार

   नहीं थी। कहते हैं, इसमें अभी अहंकार बचा हुआ था। इसलिए यह भी नष्ट हो गया।
5. जिनियाक दोंयी- यह सूरज का पाँचवाँ रूप था, जो जीवन के अनुकूल साबित हुआ। 'जिनियाक दोंयी' का

   शाब्दिक अर्थ है, माता की तरह कोमल और मृदुल। इसी के कारण पृथ्वी पर जीवन का आगमन हुआ। यह पालनहार है, माता है। इसकी भी अपनी एक समय-सीमा है। यह फिर से रूप बदलेगा। तब पृथ्वी का क्या रूप होगा, कोई नहीं जानता।"[11]

सूर्य, धरती और चंद्रमा का संबंध :

सूरज, चाँद और धरती ने मिल कर जल, वायु आदि को जन्म दिया। तीनों के इस संबंध को भी वैवाहिक माना गया, क्योंकि विवाह में दो शरीर अदृश्य रूप से एक हो जाते हैं और नए जीवन को जन्म देते हैं। इनके संबंध को इस तरह देखा जाना सत्य के अधिक करीब माना जा सकता है।"[12]

कल-क्रमानुसार उत्पन्न प्राणियों के वर्ग :

1. निग तानी – पेड़-पौधे तथा पंखधारी जीव
2. निब तानी – मिथुन, गाय, बकरी, सूअर, हिरण, बारहसिंघा, हाथी
3. नीबंग या नीकुर तानी – बिल्ली, चीता, बाघ
4. नीसि तानी – जलचर
5. नीमा तानी – बनमानुष
6. न्यीदिक तानी – विष तथा रोग
7. नीया तानी – विभिन्न रंगों और आकारों वाले मानव[13]

क्रमानुसार चराचर जगत में मानव की स्थिति :

"मनुष्य सबसे बाद में उत्पन्न हुआ।...सब कुछ बन गया, धरती तब भी कुछ-कुछ खाली-खाली और खामोश थी, कुछ अधूरी-सी। एक दिन सभी 'उईयु' अर्थात आत्माओं (निग, निब, नीबंग, नीसी, न्यीदिक) ने इस पर चिंतन किया। वे एक विशालकाय पत्थर पर बैठ कर चर्चा कर रहे थे कि अचानक वह हिलने लगा। घबरा कर वे नीचे उतर आए। तभी पत्थर और मिट्टी के बीच से एक स्त्री रेंगती हुई बाहर निकली और कुछ क्षण बाद एक पुरुष। दोनों नग्न थे। उन्होंने अपने सामने पौधों पर टिड्डा और टिड्डी को मैथुन करते देखा। वे एक-दूसरे के करीब आए और टिड्डा-टिड्डी का अनुकरण करने लगे। उसी से मानव-प्रजाति का जन्म हुआ।..."[14]

मानव सबसे छोटा है :

"मनुष्य सबसे बाद में उत्पन्न हुआ। इसलिए वह सबसे छोटा है। सबसे कमजोर भी है। अस्तित्व में दिखने वाले, न दिखने वाले सभी चर-अचर मिल कर उसको देते हैं, क्योंकि वह उनका छोटा भाई है। मनुष्य उन सभी पर आश्रित है। एक छोटा-सा कंकड़ भी उससे अधिक शक्तिशाली माना गया है। यही कारण है कि उसे बुद्धि का उपहार मिला। मनुष्य शारीरिक तौर पर दूसरों के मुकाबले कम शक्तिशाली था, लेकिन अपनी बुद्धि का उपयोग कर उसने हथियारों का आविष्कार किया। इसी से उसका अहंकार बढ़ा।"[15]

आदि-पूर्वज आबोतानी : स्वरूप, शक्तियाँ और स्वभाव:

"आबोतानी एक महत्त्वपूर्ण पूर्वज माने गए हैं।"[16]

"आबोतानी की तीन आँखें थीं, जिन्हें 'न्यीम दुरंग' अथवा 'कोगा मिरी' कहा गया। दो आँखें आगे हैं, एक पीछे है। वे भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों के ज्ञाता हैं। बुद्धि और ज्ञान का प्रतीक हैं।"[17]

"... आबोतानी सशरीर अब नहीं दिखते, परंतु सदा मौजूद हैं। एक कुत्ते के साथ सूरज की किरणों में धरती पर आने के लिए अस्पष्ट चेहरा लिए वह दौड़ने को तैयार्।"[18]

"..... समाज ने उन्हें 'उईयु' का दर्जा भी दिया।"[19]

"तानी कभी मरते नहीं हैं। इसीलिए ऐसी कोई कथा नहीं मिलती, जिसमें आबोतानी की मृत्यु का जिक्र हो।"[20]

"उनके घुटनों में गजब की शक्ति थी। अनेक पहाड़ों पर तेजी से चढ़ते-उतरते और अपनी विजय पताका फहराते थे।"[21]

"उनमें आत्मरक्षा का भाव था। भावी जीवन का सपना था। वे प्रगतिशील मानव थे और विकास-यात्रा का प्रतीक भी।"[22]

"वे एक महान यात्री माने गए हैं। उन्होंने ही तानी समाज को भिन्न-भिन्न फसलों के बीज दूर-द्राज के इलाकों से लाकर दिए और उनको खेती-बाड़ी करने के तरीके सिखाए।"[23]

"वे पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और पत्थरों से संवाद करते थे। शेर-चीते उनके मित्र थे और चींटियाँ उनकी सहेली। वे अजगर पर बैठ कर सुस्ताते थे।"[24]

"आबोतानी का चरित्र आम नहीं है।"[25]

"वे साजिश रचना जानते थे, लेकिन बुरे आदमी नहीं थे।"[26]

"इतने मजाकिया और मसखरे हैं कि हँसा-हँसा कर लोगों का मनोरंजन करते हैं।"[27]

"कहते हैं कि उईयु ने आबोतानी की 'न्यीम-दुरंग'- जिसे 'कोगा मिरी' भी कहा गया है- को छल से छीन लिया। इसी शक्ति के कारण उनकी शक्ति ऊईयु के बराबर हुआ करती थी, वह अदृश्य चीजों को भी देख सकते थे, दूसरों के मन को पढ़ सकते थे; भविष्य उनकी मुट्ठी में था, भूत उनके पैरों तले और वर्तमान उनके रक्त में था। इसी के चलते उईयु आबोतानी को पराजित नहीं कर पाते थे, लेकिन न्यीम-दुरंग से वंचित होकर आबोतानी बहुत ही साधारण, कमजोर तथा भयातुर हो गए। उनके अंदर नैराश्य और कुंठा ने जन्म लिया। वे पशु-पक्षियों का कलेजा चीर-फाड़ कर देखने लगे। वह जानना चाहते थे कि इन पशुओं के मन में क्या चल रहा है?"[28]

मिट्टी :

"आदमी मर जाता है, परंतु उसका शरीर सदा के लिए संसार में रह जाता है। इसीलिए तानी समाज के लोग मिट्टी को अपना पूर्वज मानते हैं, जो कभी नहीं मरती। पूर्वज हमारे शरीर में रक्त बन कर दौड़ते रहते हैं। मिट्टी के एक-एक कण में हमारे पूर्वज जिंदा हैं। मिट्टी का एक-एक कण सुनता है, धड़कता है, हमें जिंदा रखता है और जीवन देता है। बड़ी पूजा के वक्त इन पर किसी प्रकार की चोट नहीं की जाती। यह मिट्टी वस्तुत: पूर्वजों के प्रति सम्मान है। प्रकृति के साथ हमारी एकात्मकता के प्रति सम्मान।"[29]

इकी :

"माना जाता है, इकी अर्थात कुत्ते ने धान के बीज को लाने में आबोतानी की मदद की थी। उसने अपनी जान तक को जोखिम में डाला था। यही कारण है कि उसका सम्मान किया जाता है। न्यीशी लोग धान कटाई के वक्त इकी की खूब खातिरदारी करते हैं। सबसे पहले उसी को भोजन कराया जाता है..... "[30]

"इकी आदमी का सबसे करीबी मित्र है, रक्षक है, सहयोगी और मार्गदर्शक है। प्रत्येक तानी के घर में इसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। ऐसा माना जाता है कि इनके पास उईयु अर्थात अदृश्य शक्ति को देख सकने की शक्ति होती है।"[31]

पत्थर :

"जल, वायु और धरती ने मिल कर सर्वप्रथम 'अलंग' अर्थात पत्थर को आकार दिया। उसी ने नदियों का मार्ग तैयार किया। उसके बिना जल का बहाव संभव नहीं हो पाता। वह बिछ जाता है- तभी नदी बहती है। उनमें नर-मादा भी होते हैं। मादा को 'लंग्न' तथा नर को 'लंग्प' कहा जाता है। उनके आकार-प्रकार से नर और मादा की कल्पना की जाती है।"[32]

"पत्थर को आज भी बड़ा भाई ही मानते हैं। वह जन्म लेता है, जन्म देता है। मर भी जाता है। उसके होने से ही हम हैं। मृतक को मिट्टी में दफनाने के बाद कब्र पर पत्थर रखने का रिवाज है। माना जाता है कि मृत्यु के तीन दिन बाद तक मृतक अपनी इच्छाओं को त्याग नहीं पाता। वह परिजनों के आस-पास ही रहने की जिद करता है। चौथे दिन उसकी अगली यात्रा आरंभ होती है। पाँचवें दिन वह पूर्वजों के साथ चल देता है।

कब्र पर रखा पत्थर इस बात का प्रतीक है कि शरीर और आत्मा के बीच इसी तरह की सीमा-रेखा है।"[33]

तानी आदिवासी समुदाय की प्रकृति संबंधी समझ और व्यवहार

प्रकृति से संबंध का प्रारंभ संवाद से :

मानव को मानव से जुड़ना हो अथवा मानवेतर प्राणियों और वस्तुओं से, संवाद ही एकमात्र माध्यम होता है। यह संवाद निर्मित और अर्जित शब्दों, भाषेतर ध्वनियों, स्थूल-सूक्ष्म संकेतों, चित्रों, रंगों, गंध, प्रतीकों, मुद्राओं-भंगिमाओं, वस्त्राभूषणों, देह-गतियों आदि के साथ ही मौन की वैविध्यमयी दशाओं से संभव होता है। तानी दर्शन में सन्नाटे और मौन को संवाद-सेतु के रूप में विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। इसके लिए पत्थर को प्रतीक के रूप में चुना गया है और कहा गया है कि पत्थर की भाषा 'मौन' है- "xxx पत्थर निर्जीव नहीं है, लेकिन वह मनुष्य की भाषा नहीं बोलता। मौन उसकी भाषा है।"[34] लेखिका ने पत्थर की भाषा और उसके साथ मनुष्य के संवाद के संबंध में अपना एक विलक्षण अनुभव साझा किया है। इसका संबंध स्वयं लेखिका के पिता से है- "प्रकृति से संवाद के संबंध में थोड़ा ही सही, परंतु जिन लोगों ने महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ देकर मेरी मदद की, उनमें मेरे पिता जी प्रथम व्यक्ति थे। बचपन से देखती आई हूँ, वह पत्थरों से संवाद करते थे। किसी को यह मूर्खतापूर्ण लग सकता है, परंतु जो लोग करते हैं, वे अपने ढंग से करते हैं, वे उत्तर के लिए प्रतीक्षा नहीं करते। दरअसल, उनको माध्यम बना कर वे स्वयं से ही वार्तालाप करते हैं, परंतु उनके साथ संबंध जोड़ते हैं मौन में। उन्हें देखने के लिए उनके पास अपनी ही अनूठी दृष्टि होती है। उनसे कुछ मांगा नहीं जाता, बल्कि उन्हें समझने का यह एक ढंग होता है।"[35]

जंगल के पास संवाद का एक सशक्त माध्यम गंध को माना जा सकता है। गंध की भाषा में मधुमक्खियों को अत्यंत कुशल माना जाता है। वे अपने इस कौशल के बल पर बहुत दूर-दूर के बियाबान जंगलों में खिलने वाले फूलों से लेकर खेतों में फूलती सरसों के फूलों तक पहुँच कर मधु-संचय कर लेती हैं और बिना किसी भटकाव के अपने छत्तों में लौट आती हैं। गंध की भाषा को सुनने-समझने में श्वानों को भी कुशल माना जाता है। प्रकृति के सान्निध्य में बसने वाले लोक-समाज गंध की भाषा के रहस्य जान कर ही जंगल से अपने रिश्ते बनाते हैं। लेखिका ने इसका संकेत करते हुए कहा है- "गंध की भाषा अत्यधिक गहरी होती है। अनेक प्रकार की गंध जीवित भाषा के रूप में मौजूद है। इसी से जंगल अपना काम करता है। इस भाषा को समझना जंगल को समझना है। यह प्रकृति और मनुष्य के बीच का संवाद-सेतु है। गाँव वाले इस कला में आश्चर्यजनक रूप से निपुण होते हैं। कुत्तों को आज भी घासों, पेड़-पौधों इत्यादि से मार्ग पूछते-बतियाते देखा जा सकता है।"[36]

तानी दर्शन यह स्थापित करता है कि प्रकृति के सभी कारक बोलते-सुनते हैं। न केवल पशु-पक्षी, नदी-सरोवर-समुद्र, पर्वत-उपत्यकाएँ और पल्लवित-पुष्पित लता-गुल्म, बल्कि घरों की दीवारें, यहाँ तक कि शून्य कोने तक भी अपनी भाषा में कहते-सुनते हैं- "घर के सारे दर-ओ-दीवार सुनते हैं, हर कोना सुनता है। प्रत्येक में प्राण है, चाहे सूखी लकड़ी हो या घर का खंभा। प्रत्येक घास-फूस, पेड़-पौधे बोलते और सुनते हैं। एक ही शर्त है, आदमी को भी सुनना आना चाहिए।"[37]

यह 'सुनना आना' तानी समाज में वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर प्रकृति के साथ जीवन जीने की एक कठिन कसौटी है। सुनना उसे ही आ सकता है, जिसे जंगल की और उसकी कोटरों-झुरमुटों-गुफाओं-घाटियों में मुक्त भाव से रहते-बसते प्राणियों के स्वभाव की समझ हो, जो रंगों और गंधों से परिचित हो, जिसके मन में जंगल के प्रति लगाव और समर्पण हो और जो ऋतुओं के व्यवहार का आनंद उठा सकता हो। यह एक स्तर पर

अपने ही जीवन की भाषा सुनना और समझना है। जो जंगल की भाषा से परिचित नहीं, वह समाज से भी गहराई से परिचित नहीं हो सकता। तानी समाज ने जंगल से संवाद को इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि जिसे जंगल की भाषा को समझ पाने की तमीज नहीं, वह समाज में भी अपना सम्मान खो देता है। न्यीशी आदिवासी समुदाय की एक ऐसी ही परंपरा का उल्लेख लेखिका ने किया है- "न्यीशी समाज के बड़े-बुजुर्ग और गाँव वालों के लिए आज भी यह शर्म की बात होती है कि किसी व्यक्ति को साँप ने डस लिया। इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति, जिसे साँप ने डसा है- वह प्रकृति की भाषा को नहीं समझता। उसको इतना भी ज्ञान नहीं था कि साँप के डसने तक की नौबत को आने से रोक पाता। इसी शर्म के कारण लोग सर्प-दंश के बाद गोदामों में तीन-चार दिन तक छुप कर रहते थे। किसी को अपना चेहरा नहीं दिखाते थे। एकांत में वे चिंतन-मंथन करते थे कि उन्हें इसी तरह की गलती फिर से नहीं दोहराना चाहिए अन्यथा साँप उन्हें दोबारा डस सकता है।"[38]

एक और तथ्य यह, कि तानी दर्शन के अनुसार मानव जब अपनी भाषा का निर्माण करता है, तो जंगल उसके स्वरूप गठन से लेकर शब्द-संपदा और उच्चारण-विधि तक में हस्तक्षेप करता है। उसके पेड़-पौधे, उसके लता-पुष्प, उसके पशु-पक्षी, उसके नदियाँ-झरने चुपचाप मानव-भाषा में समा जाते हैं और उसे जीवनी-शक्ति प्रदान करने लगते हैं। जंगल से बादलों की जुगलबंदी, जल-संभार की कुलकुल, हवा का आरोही-अवरोही संगीत, मौसम की तरल-शुष्क भंगिमाएँ, निर्धारित करती हैं कि मानव अपनी बनाई भाषा के प्रयोग की कौन-सी शैलियाँ, कौन-सी उच्चारण-विधियाँ, शब्द-भंडार की कौन-सी अर्थच्छवियाँ व्यवहार में लाए। यहाँ तक कि जब मानव-भाषा दम तोड़ने लगती है, तो उसके लिए प्राण वायु की खोज में भी मनुष्य को जंगल-पहाड़-खेत की ही याद आती है। प्रकृति यहाँ भी मनुष्य का साथ निभाती है, निर्माण से अंत तक सहयोग और साथ- "... प्रकृति ने मानवी-भाषा निर्माण में स्वत: ही मनुष्य का साथ निभाया है।"[39] इसके आगे यह भी कि "किसी स्थान पर पाए जाने वाले शब्दों का संबंध वहाँ मूल रूप से पाए जाने वाले पेड़-पौधों से होता है। जिस तरह के पेड़-पौधे पाए जाते हैं- उससे संबंधित शब्द बनाए जाते हैं। ..... कई भौगोलिक कारण होते हैं, जिनसे भिन्न-भिन्न शब्द और उनके उच्चारण पैदा होते हैं।

अधिक गर्मी अथवा अधिक ठंड के कारण भी उच्चारण में समानताएँ-भिन्नताएँ पाई जाती हैं।"[40]

प्रकृति और भाषा के संबंध के ये कुछ महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, जिनके प्रभाव में तानी समुदायों ने अपनी भाषाओं का निर्माण करते समय प्रकृति के प्रति सम्मान का विशेष ध्यान रखा। प्रत्येक तानी आदिवासी समुदाय की "भाषा की बनावट इस तरह से है कि तानी समाज के लोग भूलकर भी प्रकृति को अपने से कमतर अथवा निम्न मान ही नहीं सकते। मसलन, छिपकली को 'सोपिन' कहा जाता है- आदमी का नाम भी सोपिन है। उसी प्रकार तापिन (चमगादड़), ताबी (बाँस), ताकार (तारे), ताब (साँप), याखा (काली), ताखा (काला), यालांग (लाल), यापुंग (श्वेत) इत्यादि। तानी भाषा में ये सारे शब्द गाली अथवा घृणा का भाव उत्पन्न नहीं करते।"[41]

प्रकृति सहचर है, परिवार है :

तानी दर्शन की मान्यता है कि "प्रत्येक चर-अचर में प्राण हैं, अत: बिना आज्ञा लिए उनका उपभोग करने का अर्थ है, उनको कुपित करना। तानी समाज मानता है कि प्रकृति और मनुष्य एक-दूसरे के सहचर हैं।"[42] प्रकृति परिवार है, इसीलिए आदिवासी समुदाय के लोग स्वयं को भिन्न-भिन्न प्रकार से सजा कर उसके साथ एकाकार हो जाना और अकुंठ जीवन जीना चाहते हैं। लेखिका ने कहा है, "पूरा चराचर जगत एक परिवार है;

सब सामान्य और अनोखे हैं। इसी मान्यता से प्रेरित होकर लोग पशु-पक्षियों के पंखों, चोंच, सींग, चमड़े, पूँछ, बाल इत्यादि से अपने शरीर को सजाते हैं।"[43]

प्रकृति गुरु है :

तानी दार्शनिक चिंतन का यह पक्ष बहुत ध्यान खींचता है कि वह प्रकृति को मानव की गुरु स्थानीय मानकर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। ऋषियों और दार्शनिकों की एक वैश्विक परंपरा मिलती है, जो मनुष्य और प्रकृति के संबंधों की व्याख्या करते हुए स्थापित करती है कि मानव का गुरु कोई मानव न होकर केवल प्रकृति ही हो सकती है। गुरु नानक ऐसे ही चिंतकों में गिने जाते हैं। ऐसा होने के तीन मुख्य कारण हैं; एक यह, कि प्रकृति के पास जीवन के कोमल-कठोर और सृजन-विनाश भरे अनुभवों का अपार भंडार होता है, दूसरा यह, कि उसकी भाषा असीमित अभिव्यक्ति स्रोतों से संपन्न होने के कारण अधिक संप्रेषणपरक होती है, और तीसरा यह, कि प्रकृति स्वयं जीवन जीते हुए, जीवन के प्रयोग करते हुए, बिना सूचना दिए, बिना प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए स्वाभाविक रूप से सिखाती है। तानी कथाएँ पुस्तक में इस संबंध में एक कथा का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार- "पहले 'सिन्यी' अर्थात मादा मिथुन प्रकट हुई; इसके कुछ क्षण बाद 'बिन्यी' अर्थात मानव-स्त्री। भूख से सर्वप्रथम दोनों बहनों का परिचय हुआ। दोनों ने चारो तरफ नजरें दौड़ाईं। पेड़-पौधों को देख कर सिन्यी के मुँह में पानी भर आया। उसने कच्ची घास खाना शुरू कर दिया। बिन्यी भी बहुत भूखी थी, परंतु वह घास-फूस नहीं खा सकती थी। सिन्यी ने कहा, "मेरी प्यारी बहन, मेरे इन बड़े-बड़े कानों को देखो। इन्हीं की तरह 'उप्पी' (चावल साफ करने का उपकरण) बनाओ। सींगों की तरह हथियार बनाओ। पत्थर तुम्हें आग देगा। हवा तुम्हारी सहेली है। जल तुम्हारा साथ देगा। मेरी तरह कच्चा नहीं, पका कर तुम खा लेना।" यह कहते हुए उसने बहन को सब-कुछ सिखाया।"[44] लेखिका ने इस कथा का निष्कर्ष देते हुए लिखा है- "इस कथा से इस बात का संकेत मिलता है कि प्रकृति ही गुरु है। विराट की भाषा समझना इसकी प्रथम शर्त है।"[45]

प्रकृति और मानव के बीच एक जीवन-अनुशासन-रेखा भी है :

प्रकृति स्वाधीन है और मानव अपने जन्म से ही स्वाधीनता अर्जित करने के संघर्ष में लगा हुआ है। उसे चराचर जगत में अपने सबसे निर्बल होने का दंश जितना सालता है, उतना ही उसके बुद्धि-बल का अहंकार घायल और आहत होकर प्रकृति को पराजित करने की व्यूह-रचना में प्रवृत्त होता है। उसने जीवनदायिनी प्रकृति को ही अपनी स्वाधीनता के मार्ग में सबसे कठिन बाधा मान लिया है, इसलिए उसकी जीवन और आर्थिक आत्म-निर्भरता की धारणाएँ भी अंतत: प्रकृति के विनाश के भीतर विकास खोजने की दिशा में जाती हैं। मानव-सभ्यता के आगे बढ़ने के साथ-साथ यह संघर्ष बहुरूपिया बन कर निरंतर आगे बढ़ा है और हमारे वर्तमान तक पहुँच गया है- आशंका है कि मानव ने प्रकृति के साथ अपने संबंध के यथार्थ को समझने व स्वीकार करने पर ध्यान न दिया, तो यह आगे भी चलता रहेगा।

आबोतानी और तानी-पूर्वजों के अनुभवों की गहराई से अस्तित्व में आया तानी-दर्शन प्रकृति और मानव के संघर्ष से उत्पन्न चिंता के परिप्रेक्ष्य में एक ऐसी धारणा प्रस्तुत करता है, जो आज हमारे काम आ सकती है। वह धारणा 'प्रकृति और मानव के बीच दापो' की धारणा है। इसमें कहा गया है- "मनुष्य और प्रकृति के अन्य रूपों के बीच पारिवारिक रिश्तेदारी है। ये सभी सहोदर हैं, लेकिन मनुष्य का स्वभाव अन्य सभी से भिन्न है, अत: इसकी अपनी भिन्न दुनिया है। उईयु और नीया अर्थात मानव ने इसी कारण एक-दूसरे के बीच एक

'दापो' (सीमा-रेखा) का निर्धारण किया। दोनों का अपनी-अपनी सीमा में रहना आवश्यक है। उन्हें एक साथ रहते हुए भी अपनी-अपनी दुनिया में एक अनुशासन के तहत, अलग-अलग रहना है। सीमा का अतिक्रमण वर्जित है। अन्यथा सजा होती है। इसीलिए मनुष्य को प्रकृति से कुछ भी लेना हो, तो अनुनय-विनय करता है। ऐसा नहीं होने पर विनाशकारी घटनाएँ घट सकती हैं।"[46]

पशु-पक्षी हिंसा मूल सामाजिक प्रवृत्ति नहीं :

धर्मानुशासन के रूढ़ हो जाने और आवागमन की सुविधाओं का जाल तैयार हो जाने तक भोजन की आदतें और पद्धतियाँ जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियों और जीवन के लिए किए जाने वाले भौतिक संघर्षों से निर्धारित होती रही हैं। इसीलिए पशु-पक्षी हिंसा का प्रारंभ जीवन को बचाए रखने के उपायों के अनिवार अंग के रूप में हुआ। तब हिंसा आदत या स्वभाव से जुड़ा हुआ कार्य नहीं था। कालांतर में मनुष्य के ऐतिहासिक, धार्मिक और कहीं-कहीं सांस्कृतिक दुराग्रहों के कारण इसने 'भोजन की आदत' का रूप लिया। तभी यह आर्थिक समृद्धि के प्रदर्शन और जीवन-शैली के निर्धारण में बंधन स्वीकार न करने वाली इच्छा के चलते सामाजिक प्रवृत्ति बन जाने की कोशिश भी करने लगा। लेकिन यह सवाल हमेशा बना रहा कि क्या पशु-पक्षी हिंसा किसी समाज की सामान्य प्रवृत्ति हो सकती है? इस सवाल की प्रासंगिकता आदिवासी समाजों के संदर्भ में बहुत अधिक है; क्योंकि सही जानकारियों के अभाव में नागर-समाज के बीच यह धारणा बनी हुई है कि आदिवासी समाजों में हिंसा के प्रति नकार का भाव नहीं होता। आदिवासियों के, जीवन के लिए संघर्ष की उपेक्षा करके कभी-कभी उनके प्रति अन्यथा-भाव प्रदर्शन की भावना से इस धारणा का दुरुपयोग भी किया जाता है। ऐसे सभी लोगों को तानी कथाएँ पुस्तक का यह अंश पढ़ना चाहिए- "तानी समाज में पशु-पक्षियों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मनुष्य से पहले इस पृथ्वी पर जन्मे हैं, इसलिए उन्हें तानी खुद से बड़ा मानते हैं। वे हमें जीवन देते हैं। इसलिए आवश्यकता से अधिक पशु-पक्षियों का शिकार करना अथवा मांस खाना अशुभ माना गया है। माना जाता है कि उईयु इसके लिए सजा देता है। आदमी कई तरह के रोगों का शिकार हो सकता है, अप्राकृतिक मृत्यु को भी प्राप्त कर सकता है। गर्भवती स्त्रियों का पति जंगली पशुओं का मांस खाए, तो इसका असर होने वाले बच्चे पर पड़ता है। पशुओं का स्वभाव उसमें आ सकता है। गर्भवती माता भी कई पशुओं का मांस नहीं खा सकती।"[47]

बलि-प्रथा भी बाद में कभी प्रारंभ हुई :

इसी से मिलती-जुलती बात बलि-प्रथा के संबंध में भी है। प्राकृतिक, दैवी और अति-मानवी अथवा शैतानी शक्तियों को प्रसन्न करके अपनी मनोकामनाएँ पूरी करने के लिए पशु-पक्षियों की बलि आयोजित करने का चलन छद्म धार्मिक मान्यताओं की छाया में अनेक जगह पलता रहा है, यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य को भी बलि चढ़ाया जाता रहा है। आदिवासी समाजों में बलि-प्रथा के चलन पर भी असंख्य पृष्ठ रंगे हुए मिल जाते हैं। लेखक आदिवासी समाजों में बलि की प्रथा के प्रारंभ होने और उसके निरंतर चलते रहने के कारणों की खोज में कई बार असत्य और अतिवादी कल्पनाओं के शिकार भी देखे जाते हैं।

तानी कथाएँ की लेखिका ने तानी समाज में विद्यमान बलि-प्रथा के प्रसंग में उसकी उपस्थिति की सूचना देते हुए ही एक खोजपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। इस विवेचन में समाज-सांस्कृतिक लोक-इतिहास को आधार बना कर बलि-प्रथा की जड़ तक पहुँचने की कोशिश की गई है और उसके सहारे आदि-पूर्वज आबोतानी

के व्यक्तित्व पर चिपका दी गई एक निर्बलता को भी निर्मूल सिद्ध किया गया है। लेखिका ने बताया है कि, "तानी कथाओं में बलि-प्रथा का जिक्र सिर्फ एक बार आता है, जहाँ आबोतीनी को पादने का रोग लग जाता है। उसे ठीक करने के लिए मिथुन की बलि दी जाती है, परंतु रोग फिर भी बना रहता है। यह तानी कथा अवश्य है, परंतु इसका आबोतानी की कथा होना संदिग्ध है। दरसल, आबोतानी किसी भी प्रकार से अंधविश्वासी नजर नहीं आते। अत: मुझे यह बाद में उनके साथ जोड़ दी गई कथा लगती है।"[48]

इसके आगे इस संबंध में एक और कथा का उल्लेख किया गया है, जिसमें उईयु द्वारा आबोतानी की न्यीम दूरंग नामक शक्ति छीन ली जाती है और वे परेशान होकर पशु-पक्षियों के कलेजे चीर कर उनके मन में चल रही गतिविधियों का पता लगाना चाहते हैं। इसी आधार पर संदर्भित कथा में कहा गया है कि "सभी लोग आबोतानी का अनुसरण करते थे। उनकी इस गतिविधि को भी लोगों ने आबोतानी का इशारा माना और पशु-पक्षियों को मार कर उनके कलेजे द्वारा जानने का प्रयास करने लगे कि प्रकृति-शक्ति के मन में मनुष्य के प्रति क्या है, जिसे जान कर रोगों अथवा अनहोनी से बचा जा सकता है। माना जाता है कि उसी समय से बलि-प्रथा का प्रारंभ हुआ।"[49]

ये दोनों कथाएँ प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने निष्कर्ष दिया है- "इस कथा से स्पष्ट है कि बलि-प्रथा का अस्तित्व पूर्व में नहीं था। बाद में मनुष्य के मनोरोग से यह उत्पन्न हुआ। इस कथा को भी मैं आबोतानी की कथा नहीं मानती, क्योंकि उनकी तीसरी आँख़ को ज्ञान का प्रतीक कहा जाता है। ज्ञानी व्यक्ति कभी भी अंधविश्वास को साथ लेकर नहीं चलता। इस कथा में आबोतानी को भयातुर बताया गया है, जबकि तमाम कथाओं में उन्हें भयमुक्त और साहसी व्यक्तित्व वाला बताया गया है। वह प्रकृति के साथ परम संवाद में लीन हैं। यही उन्हें अनुशासित करता है। अत: यह कथा अवश्य ही बाद में तानियों की ईजाद है।"[50]

तानी-दर्शन में आदि-पूर्वज के प्रति नायक-पूजा का भाव नहीं :

तानी समुदाय (आपातानी, न्यीशी, आदी, गालो, तागिन) आदि-पूर्वज के प्रति अगाध सम्मान, समर्पण और श्रद्धा का भाव रखता है, लेकिन किसी में भी नायक-पूजा का प्रचलन नहीं है। तानी कथाएँ की लेखिका की यह विवेचन-निष्पत्ति धार्मिक और सामाजिक ही नहीं, राजनैतिक नायक-पूजकों के हृदय में भी हलचल मचा सकती है। धर्म, इतिहास, समाज और राजनीति के नायकों की पूजा इन सभी नायकों के जीवन और कर्तृत्व से प्रकट होने वाले अनुकरणीय मूल्यों, मर्यादाओं और व्यवहार को जीवन का व्यावहारिक अंग स्वीकार करने से रोकती है। नायक-पूजा का घटाटोप निर्मित करके जो धर्मांधता, इतिहासांधता, समाजांधता और राजनैतिक अंधानुकरण का उन्माद खड़ा होता है, वह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को वैचारिक-विनाश के साथ ही विचार-व्यवहार की हिंसा की ओर धकेलने वाला सिद्ध होता है। यह देख कर अच्छा लगता है कि तानी दर्शन में इस नायक-पूजा के लिए स्थान नहीं है और आदि पूर्वज आबोतानी को पूज्य मानने के बदले श्रद्धा व प्रेम का पात्र मान कर उनके द्वारा स्थापित मान-मूल्यों को जीवन में उतारने पर ही सारा बल दिया गया है। इससे किसी के भी मन में तानी दर्शन की वैचारिक और सामाजिक तार्किकता के प्रति सम्मान का भाव पैदा होना स्वाभाविक है। लेखिका ने तानी दर्शन का विवेचन करते हुए नायक-पूजा के संदर्भ में जो निष्कर्ष प्राप्त किए हैं, उन्हें समग्र रूप में देखने पर यह महत्त्वपूर्ण दार्शनिक व्यवस्था समझ में आ जाएगी-

"जिस प्रकार पाँच सूर्य हुए, उसी प्रकार पाँच शक्तिशाली पूर्वज भी हुए। 'दोंयी' अथवा 'नीबो' नामक पूर्वज उनमें सबसे शक्तिशाली थे, जिनको इस समूह ने अपना पिता स्वीकार किया और उन्हें आबोतानी कहा।"[51] "वह प्रेम-पात्र हैं, पूजनीय नहीं। वे इतने खास लगते हैं कि मन श्रद्धा से भर जाता है। इतने धूर्त भी हैं कि मन उनको कोसने लगता है।"[52]

"उनके अति मानवी रूप को तानी समाज शायद स्वीकार नहीं करना चाहता, क्योंकि यह उनको पूजना नहीं, बल्कि प्रेम करना चाहता है। इसीलिए जब भी वे आएँ, सिर्फ और सिर्फ अपने उसी रूप में आएँ, ताकि जीवन की सत्यता बनी रहे..."[53]

"आबोतानी अति महत्त्वपूर्ण पात्र अवश्य हैं,परंतु उन्हें नायक मान कर पूजने का रिवाज नहीं है, न ही उनके कोई प्रतीक बनाए जाते हैं। चूँकि उनका नाम और काम ही हमारे सामने कथाओं की शक्ल में मौजूद है, इसलिए उनके रूप-आकार को मूर्त रूप देने के लिए मूर्ति इत्यादि गढ़ने की जरूरत महसूस नहीं की गई। नायकवाद कहीं भी इस समाज में देखने को नहीं मिलता।"[54]

समाज में नायक की उपस्थिति और नायकवाद की अनुपस्थिति किसी सभ्यता और संस्कृति की सुंदरतम अवस्था होती है। चकाचौंध भरे महिमा-मंडन से सुरक्षित नायक वर्तमान के साथ ही भविष्य को भी सार्थक दिशा देने वाले सिद्ध होते हैं। जो समाज उन्हें पूजने की आवश्यकता में बंध जाने के बदले प्रेम और श्रद्धा के माध्यम से उनकी निकटता प्राप्त करके उनके कार्यों के प्रभाव को अपने कार्यों की प्रेरणा बना लेता है, वह जीवित एवं प्रगतिशील समाज बनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। विश्व भर को ऐसे नायकों की हमेशा आवश्यकता रही है।

तानी दर्शन में मानव-व्यवहार को अनुशासन प्रदान करने वाली व्यवस्था :

दर्शन मनुष्य के सामाजिक व्यवहार के साथ ही चराचर जगत से उसके संबंधों को भी नियंत्रित करता है। वह व्यक्ति और समाज के लिए अध्यात्म के अतिरिक्त एक आचार-प्रणाली भी निर्मित करता है, जिससे संपूर्ण जीवन अनुशासित बना रहता है। जो धर्म दर्शन द्वारा खोजे गए अध्यात्म और आचार-प्रणाली से जितना ग्रहण कर पाता है, वह अपने अनुयायियों का उतना ही मार्गदर्शन करने और उनके जीवन को अनुशासित रखने में सफल होता है। जहाँ तक तानी समाज का प्रश्न है, उसकी दार्शनिक, धार्मिक और आध्यात्मिक परंपराओं में व्यक्ति और समाज, दोनों के जीवन-व्यवहार को अनुशासित रखने की व्यवस्था दिखाई देती है।

तानी कथाएँ में बताया गया है कि "तानी समाज में पाप-पुण्य की कल्पनाएँ नहीं हैं, अत: यह इस प्रकार के पक्षपात से दूर है। यही कारण है कि इस समाज में स्वर्ग-नर्क की कल्पना का भी ईजाद नहीं हुआ, न ही पुनर्जन्म का।"[55] यह विचार करने का विषय है कि तानी दर्शन पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म की अवधारणाओं से क्यों बच कर चला है? क्या ये सब मनुष्य के मन में अनावश्यक भय पैदा करते हैं? क्या तानी पूर्वजों को लगता था कि कुछ धार्मिक लोग इनका दुरुपयोग कर सकते हैं?

कारण जो भी रहे हों, लेकिन मनुष्य के व्यवहार और आचरण को मर्यादा में बांध कर रखने के बारे में तानी पूर्वज गंभीरता से सोचते अवश्य थे। इसके लिए उन्होंने जिस मार्ग की खोज की, वह प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों को प्रकृति की शक्तियों द्वारा देखे जाने का मार्ग है। देखते रहने का काम सूर्य और चंद्रमा करते हैं। सम्मिलित रूप से ये दोनों संपूर्ण प्रकृति का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य के प्रत्येक आचरण को

वह प्रकृति देख रही होती है, जो उसके आस-पास है, जिसे वह प्रति दिन स्वयं अपने सामने पाता है, जिसके साथ उसका निकट का नाता है। और ये, सूर्य और चंद्रमा केवल मनुष्य के कामों को ही नहीं देखते, बल्कि वे सृष्टि में सब कुछ होते हुए को देखते हैं। मनुष्य भी उन्हीं में से है, इसीलिए वह उनसे बच नहीं सकता। देखने की पद्धति भी बड़ी अनोखी है। धूप निकलती है, तो तानी समाज में कहा जाता है, "दोंयी-अ कादो"[56], अर्थात सूर्य देख रहा है।

सूरज की ही भाँति चंद्रमा भी देखता रहता है। एक विशेष बात यह, कि सूर्य और चंद्रमा मनुष्य और सब-कुछ की गतिविधियों को देखते अवश्य रहते हैं, लेकिन किसी प्रकार का पुरस्कार अथवा दंड देने का कार्य नहीं करते, वे केवल साक्षी की भूमिका में हैं- "सूर्य, चंद्र और तारे जिमी-जमा की आँखें हैं। इसलिए उन्हें साक्षी माना गया है। वे सदा देखते रहते हैं, सदा मौजूद हैं। सूर्य, चंद्र आदि अर्थात दोंयी और पोलो का नाम एक साथ लेने अर्थात 'दोंयी-पोलो' कहने का अर्थ सिर्फ सूर्य और चंद्र नहीं होता। पूरी प्रकृति अथवा संपूर्ण अस्तित्व को 'दोंयी-पोलो' कहते हैं।"[57] यह एक मनोवैज्ञानिक व्यवस्था है, जो मनुष्य के व्यवहार को मर्यादित बनाए रखने का कार्य करती है- व्यक्तिगत जीवन में भी और सामाजिक जीवन में भी।

मृत्यु के बाद आत्मा के पूर्वजों के पास जाने में दो बाधाएँ अवश्य हैं। व्यक्ति की आत्मा को पूर्वजों के मार्ग में 'चीगो-बो' और 'दोगो-बो' के प्रश्नों के एक-एक कर उत्तर देने होते हैं, तभी वे आगे बढ़ पाती हैं। "विशालकाय सर्प के रूप में लेटा हुआ चीगो-बो मृतात्मा से सवाल-जवाब करता है। जैसे, क्या उसने रिश्तों को निभाया? पूर्वजों का मान रखा? धन कमाया, उसका सही तरीके से भोग किया? कहीं वह किसी और की मेहनत पर तो नहीं जिया? इस शरीर को किस प्रकार सार्थक किया? मन को किस तरह संयमित रखा? कोई हत्या तो नहीं की? अपने समुदाय का खयाल रखा?"[58] ऐसे सभी प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर मिलने पर चीगो-बो आत्मा को आगे जाने देता है।

कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति जागतिक जीवन में मर्यादित जीवन नहीं जी पाता, लेकिन किसी प्रकार अपने उत्तरों से चीगो-बो को संतुष्ट करने में सफल है जाता है और आगे बढ़ने की अनुमति प्राप्त कर लेता है। आगे दोगो-बो उसकी प्रतीक्षा करता रहता है। ऐसी स्थिति के बारे में कहा गया है- "सांसारिक जीवन को जिसने संतुलित तरीके से नहीं जिया, परंतु मृत्यु के बाद उसकी आत्मा 'चीगो-बो' के प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम होती है- तो वह दोगो-बो तक पहुँच जाती है। यहाँ भी कई सवाल-जवाब होते हैं। उत्तर से यदि यह संतुष्ट हुआ, तो उसको आगे जाने की इजाजत मिल जाती है और वह अपने पूर्वजों की दुनिया में पहुँच जाती है, लेकिन जवाब न दे पाए, तो पूर्वजों तक नहीं पहुँच पाने के कारण मुक्त नहीं हो पाती और और भटकती रहती है।"[59]

लेकिन यह भटकना भी चिरकालिक नहीं होता। पूर्वज स्वयं ही चीगो-बो और दोगो-बो द्वारा पैदा की गई जटिलताओं से बचने में आत्मा की सहायता करते हैं। ऐसा, मनुष्य और पूर्वजों के बीच प्रेम के स्थाई संबंध-सेतु के कारण होता है। इसके बाद भी यदि आत्मा भटकने को अभिशप्त हुई, तो "एक समय-सीमा के बाद पूर्वज उसकी मदद करते हैं, उसे अपने साथ ले जाते हैं, और वह मुक्त हो जाती है।"[60] इस विवरण के उपरांत लेखिका का निष्कर्ष है, कि "ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे पूर्वजों ने व्यक्ति-मन को बारीकी से समझा था- इसीलिए अपने वंशजों को अनुशासित करने के लिए इन विश्वासों के प्रति आस्था जगाने का प्रयास किया होगा।"[61]

ध्यान देने योग्य है कि ये सब व्यवस्थाएँ पूर्वजों की सर्वोच्चता को मान्यता देती हैं। पूर्वजों का लोक भी कोई भयावह लोक नहीं है और न वहाँ कोई दंडात्मक प्रावधान हैं। वह एक ऐसा लोक है, जिसमें पूर्वजों का निवास है और जहाँ आत्मा के जाने पर पूर्वजों द्वारा उसका स्वागत किया जाता है। ऐसे वातावरण में जाने के लिए मनुष्य इस लोक में मर्यादित एवं नैतिक आचरण को प्राथमिकता देता है। उसे यह संकोच भी रहता है कि यदि उसने अच्छा आचरण न किया और पूर्वजों ने पूछा, तो वह क्या जवाब देगा। इसका एक प्रसंग तानी कथाएँ की लेखिका ने दिया है। सामग्री की खोज में जब वह दापोरजी के एक तागिन पुजारी के पास पहुँचती है, तो वह हँसोड़ पुजारी परिहास करते हुए जानकारी देने के बदले पैसे देने की बात करता है। लेखिका परिहास को समझ नहीं पाती और उसे पैसे देने लगती है। इस पर वह पुजारी जो कहता है, वह आचरण की मर्यादा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। लेखिका ने बताया है कि "मैंने पाँच हजार रुपए उनके हाथ में थमाए तो वे ना-ना कर उठे। कहने लगे, "पूर्वजों से सजा दिलवाओगी? अशुभ सपनों से वे मुझे डराएँगे। मरने के बाद उन्हीं के पास ही तो पहुँचना है हमें। कहेंगे, हमें बेच कर आए हो। क्या जवाब दूँगा उन्हें? पागल लड़की! चल हट, जा!" उनकी डाँट में स्नेह का स्वर था। उस स्नेहवर्षा में मैं भीग गई। उस अक्खड़, लेकिन ममता भरे तागिन पुजारी में उस सुबह मैंने अपने पूर्वजों की ही झलक पाई।"[62]

तानी समाज के धर्म होने की पहेली :

तानी दर्शन और अध्यात्म की इस प्रस्तुति के बाद हम इस ओर ध्यान दे सकते हैं कि क्या- धर्म की प्रचलित परिभाषाओं के संदर्भ में- तानी समाज के दर्शन के आधार पर किसी स्वतंत्र धर्म के अस्तित्व का निश्चित ढाँचा सामने आता है? अथवा क्या तानी समाज को भी उसी प्रकार किसी संगठित और व्यवस्थित धर्म की सीमाओं में रख कर देखा जा सकता है, जिस प्रकार विश्व के प्रचलित धर्मों के मानने वालों को देखा जाता है?

उपर्युक्त दोनों ही प्रश्नों के उत्तर में यह कहना होगा कि तानी दर्शन धर्म के प्रचलित अर्थ में किसी धर्म का ढाँचा खड़ा नहीं करता- न एक (निराकार या साकार) ईश्वर, न ईश्वरीय ज्ञान का कोई (प्रतिनिधि या पुत्र या स्वयं अवतारी ईश्वर) संदेशवाहक, न एक (या एक से अधिक) धर्म-ग्रंथ, न विधि-निषेध वाली पूजा (मूर्ति अथवा बिना किसी आकार की कल्पना के), न पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म की अवधारणा, न धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए लालच, दबाव और धर्म-युद्ध की कल्पना, और भी जो व्यवस्थित और संगठित धर्म के लिए अनिवार्य शर्त हों, कुछ नहीं।

आप दावा कर सकते हैं कि तानी आदिवासियों के पास कोई धर्म नहीं है- लेकिन ठहरिए, उस अवस्था में आपको इस कठिन सवाल का उत्तर सोच कर रखना होगा कि क्या किसी सुनिश्चित अबूझ विधि-निषेध और निर्धारित ग्रंथ व शास्त्र वाले धर्म का न होना वास्तव में धर्म का न होना है? अथवा ऐसे धर्म का न होना भी धर्म का होना है? इस उलटबासी का उत्तर तानी कथाएँ में ही देखिए- "हमें यह भी याद रखना होगा कि किसी धर्म का नहीं होना भी एक धर्म है। यह एक दृष्टिकोण है। जिसमें सत्य को अपने ढंग से देखा और समझा जाता है।"[63] इसके आगे लेखिका दृष्टिकोण और सत्य के देखने के ढंग को मूल आदिवासी स्वभाव से जोड़ती है और इसी आदिवासी शब्द को चिंतन के केंद्र में रखते हुए कहती है- "आदिवासियत शब्द ही अपने आप में एक धर्म है।"[64]

विशिष्ट दृष्टि, असंख्य प्रश्न और प्रकृति के साहचर्य में सत्य का संधान आदिवासियत को गढ़ते हैं। सवाल है कि वे कौन-से प्रश्न हैं, जिनके आभ्यंतर-जगत से आदिवासियत जन्म लेती है? इसके उत्तर के पहले जानना होगा कि आखिर आदिवासी कौन है? यह भी लेखिका से ही जानिए- "कौन है,जो हमारी नसों में दौड़ता-फिरता रहता है? यह शरीर कितने पूर्वजों से होकर यात्रा करता हुआ हम तक आया है? वे कोई तो थे जिनके कारण हम हैं? वे नहीं होते, तो हम कैसे होते? सृष्टि किस तरह एक-दूसरे से जुड़ी हुई है? अस्तित्व में जो कुछ दिखता है, उसका हमसे क्या संबंध है? कहाँ से हम जन्म लेते हैं? प्रेम क्या है? विवाह क्या है? समाज क्या है? अनुशासन क्या है? व्यक्ति की निजता क्या है? सामूहिकता क्या है, उसका क्या महत्त्व? क्या प्रत्येक वस्तु में प्राण तत्त्व है? जिन्हें हम जी ही नहीं सकते, उन पर प्रश्न क्यों नहीं करना चाहिए? पशु-पक्षियों के साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए?

इन और ऐसे अनेक अन्य प्रश्नों के उत्तर को जो लोग 'जीवन' में ही देखते हैं और जीवन को ही शास्त्र मान कर चलते हैं, वे आदिवासी हैं।"[65]

लेखिका के इस कथन से यह समझना सहज हो जाता है कि ये प्रश्न ही आदिवासी का रूपांतरण आदिवासियत के रूप में कर देते हैं, अर्थात आदिवासी और आदिवासियत अभिन्न हैं। आदिवासियत धर्म को जीने वाला आदिवासी मानता है कि, "सारे प्रश्न हमें संपूर्ण अस्तित्व से जोड़ते हैं। यही तानी धर्म है।"[66] अपनी इस अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए लेखिका का कहना है- "संपूर्ण अस्तित्व के साथ हमारी पारिवारिक रिश्तेदारी है। इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण तानी अपने आप में एक अनोखा धर्म है- धर्मविहीन धर्म। यही कारण है कि तानी समाज में किसी भी प्रकार के मंदिर, प्रतीक इयादि का निर्माण नहीं किया जाता, क्योंकि व्यापकता को किसी सीमा में सीमित नहीं किया जा सकता।"[67] और यह भी कि "... यदि तानी समाज का कोई 'धर्म' है, तो वह प्रकृति और मनुष्य के बीच अभिन्नता की भावना और उसके अनुरूप आचरण करना है। किसी भी प्रकार के कृत्रिम नियमों की व्यवस्था से यह बंधा हुआ नहीं है, न ही संगठित है- यही स्वाभाविक सहजता ही इसका प्राण है।"[68]

प्रकृति और प्रकृति के सिद्धांत व व्यवहार को समझने की आवश्यकता है :

निष्कर्ष यह, कि तानी दर्शन और उसमें अनुस्यूत धर्म एवं अध्यात्म के सत्य को पाने के लिए "प्रकृति के स्वतंत्र सिद्धांत को फिर से समझने की आवश्यकता है। आदिवासियत इसी से बनी है। यह मानवता को एक नई दिशा दे सकता है। इसको संकुचित अर्थों में देखना इसके प्रति अन्याय होगा।"[69] इसी के साथ इस सत्य को भी अपनी चेतना का अंग बनाना होगा कि "प्रकृति अपने आप में एक परम अनुशासन है। इसे समझने के बाद मनुष्य स्वतंत्रतापूर्वक जी सकता है।"[70] यहाँ तानी कथाएँ आधुनिक विश्व का, तीन शब्दों पर एक साथ विचार करने का आह्वान करती है- प्रकृति, अनुशासन और स्वतंत्रता। ये तीनों शब्द विश्व के समग्र जीवन-दर्शन के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाने वाली शब्द-संपदा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग हैं; इसीलिए सभी दार्शनिक विचारधाराएँ इनकी व्याख्या करती रही हैं, लेकिन आधुनिक सभ्यता ने सबसे अधिक छल भी इन्हीं के साथ किया है। कारण भी साफ है; औद्योगिक क्रांति से लेकर सूचना-तकनीक-क्रांति तक विश्व के विकास की जो भी योजनाएँ कार्यान्वित की गईं, उनकी प्राथमिकता संस्कृति विहीन आर्थिक विकास रही है, जिसका फलितार्थ है- मानव को प्रकृतिहीनता की ओर धकेलना, अनुशासन को मुक्त जीवन का विरोधी सिद्ध करना और स्वतंत्रता

को आत्मिक-चेतना व सामाजिक संदर्भों से पूरी तरह काट कर राजनैतिक चिंतन के साथ बांध देना। विकास और विज्ञान के नाम पर लोक तथा आदिवासी समुदायों की उपेक्षा भी इसी फलितार्थ का हिस्सा है, जबकि "विकसित कहे जाने वाले समाजों ने जंगली मान कर जिन मानव समुदायों की उपेक्षा की, वे तो विज्ञान को वास्तव में दैनंदिन जीवन में जीते हैं। जो जितना ही प्रकृति के नजदीक होगा, वह उतना ही वैज्ञानिक स्वभाव वाला होगा। इसको देखने के लिए पूर्वग्रहों से मुक्त होकर इन 'जंगली' मानव-समुदायों के करीब आना होगा।"[71]

यही वह सत्य है, जो हमें स्थानीयता और आंचलिकता से अनिवार्यत: जोड़ कर विश्व-चेतना संपन्न बनाता है और सांस्कृतिक-सामाजिक विश्व-दृष्टि प्रदान करता है। यही वह सत्य भी है, जिसने भारत के संविधान में आदिवासी समाजों व संस्कृति के संरक्षण संबंधी उपबंध शामिल करने की पृष्ठभूमि तैयार की थी।[72] सन् 1986 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'डिक्लेरेशन ऑन द राइट टु डवलपमेंट' संबंधी प्रस्ताव पारित किया और सन् 2015 में उसे 'सतत विकास के लिए कार्य-सूची, 2030' का अंग घोषित करते हुए 'हमारे विश्व का रूपांतरण' का उद्घोष किया, जिसमें स्पष्ट रूप से सभी वर्गों को समाहित करते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का लक्ष्य निर्धारित किया गया।[73] सन् 2022 में इंडोनेशिया के बाली में संपन्न हुए जी-20 शिखर-सम्मेलन में लिए गए निर्णयों और पुनर्घोषित प्रतिबद्धताओं के आधार पर जारी डिक्लेरेशन में एक बार फिर संस्कृति और आदिवासी समाज के संरक्षण को प्राथमिकता प्रदान की गई।[74] लेकिन अरुणाचल के आदिवासी समाजों के विकास के लिए सन् 1958 में जो पाँच सूत्र पं. जवाहरलाल नेहरु ने दिए थे, वे अरुणाचल, शेष पूर्वोत्तर और भारत के अन्य अंचलों के आदिवासी समुदायों की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं; ये हैं-

1. लोगों को अपनी प्रतिभा के सहारे प्रगति करनी चाहिए। उन पर हमें कुछ थोपना नहीं चाहिए। उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए।
2. जनजातियों के भूमि और वन के संबंध में प्राप्त जनजातीय अधिकारों का हमें सम्मान करना चाहिए।
3. उनके ही लोगों के बीच से एक टीम को, प्रशासन और विकास-कार्य के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। नि:संदेह आरंभ में कुछ तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से लाना चाहिए, तो भी इन क्षेत्रों में बहुत अधिक बाहरी लोगों को नहीं लगाना चाहिए।
4. हमें इन क्षेत्रों में योजनाओं का अधिक बोझ नहीं लादना चाहिए। हमें इनके सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता की भावना से नहीं, बल्कि सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए।
5. हमें सांख्यिकी या खर्च किए गए धन के आधार पर उपलब्धियों का आकलन नहीं करना चाहिए, वरन मानवीय गुणवत्ता की प्राप्ति के आधार पर परिणाम का मूल्यांकन करना चाहिए।[75]

यह मानवीय गुणवत्ता भी हमें प्रकृति और उसके अनुशासन में छिपे जीवन-मूल्यों को समझने, स्वतंत्रता और सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण करने, विकास की अव्यावहारिक अवधारणाओं पर पुनर्विचार करने, मनुष्य की गरिमा को केंद्र में रख कर सोचने तथा तानी-दर्शन जैसे समस्त वैश्विक दर्शनों के सत्य को समझ कर जीवन का मार्ग निर्मित करने से ही मिलेगी। इसी से उस विश्व-दृष्टि की उपलब्धि भी होगी, जो हमें सामूहिक रूप से जड़ताओं से मुक्त करके सच्चे अर्थों में विश्व-नागरिक बनाएगी; अन्यथा सूर्य और चंद्रमा के रूप में जिमी-जमा की आँखें तो सब-कुछ देख ही रही हैं।

परिशिष्ट :

संदर्भ सं. 72 :

भारत का संविधान

मूल अधिकार (धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार) :

25. अंत;करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता- (1) "लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंत;करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा"

- भारत का संविधान (9 दिसंबर, 2020 को यथाविद्यमान), (नई दिल्ली, विधि,न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, हिंदी अनुवाद संस्करण 2020), पृ.14

राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व :

46. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि – "राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।"

- भारत का संविधान (9 दिसंबर, 2020 को यथाविद्यमान) (नई दिल्ली, विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, हिंदी अनुवाद संस्करण 2020), पृ.23

भारत का संविधान :

कुछ वर्गों के संबंध में विशेष उपबंध (भाग-16) :

338 क. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग- (1) "अनुसूचित जनजातियों के लिए एक आयोग होगा, जो राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के नाम से ज्ञात होगा।"

(5) "आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(क) अनुसूचित जनजातियों के लिए इस संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या सरकार के किसी आदेश के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन पर निगरानी रखे तथा ऐसे रक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करे;

(ख) अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के संबंध में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जाँच करे;

(ग) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग ले और उन पर सलाह दे तथा संघ और किसी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करे;

(घ) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रति वर्ष और ऐसे अन्य समयों पर, जो आयोग ठीक समझे, राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करे;

(ङ) ऐसी रिपोर्टों में उन उपायों के बारे में, जो उन रक्षोपायों के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा किए जाने चाहिए, तथा अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण कल्याण और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के बारे में सिफारिश करे; और

(च) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण और विकास तथा उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करे, जो राष्ट्रपति संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे।"

- भारत का संविधान (9 दिसंबर, 2020 को यथाविद्यमान) (नई दिल्ली, विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, हिंदी अनुवाद संस्करण 2020), पृ.195-196

संदर्भ सं. 73 :

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास :

न्यूयॉर्क में सन् 2015 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 25 से 27 सितंबर तक आयोजित 'सतत विकास शिखर-सम्मेलन' में 193 सदस्य राष्ट्रों ने 'सतत विकास के लिए एजेंडा- 2030' स्वीकार किया था। इस शिखर-सम्मेलन का प्रातिपदिक (थीम) था- हमारी दुनिया का रूपांतरण : सतत विकास के लिए कार्यसूची- 2030 (Transforming our world : The 2030 Agenda for Sustainable Development) । इसकी पृष्ठभूमि में संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा 4 दिसंबर, सन् 1986 को प्रस्ताव संख्या 41/128 के माध्यम से स्वीकार किया गया 'विकास का अधिकार घोषणा पत्र' (Declaration on the right to Development) है। इस घोषणा पत्र में मनुष्य को विकास के केंद्र में स्थापित करने वाली प्रस्तावना और 10 अनुच्छेद हैं। इनमें से पहले, दूसरे और छठे अनुच्छेदों की महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ इस प्रकार हैं-

अनुच्छेद-1 : "विकास का अधिकार अनाहरणीय मानव-अधिकार है, जिसके बल पर प्रत्येक व्यक्ति और सभी लोग उसमें भागीदारी करने एवं योगदान करने के हकदार होते हैं और आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक विकास का उपभोग करते हैं, जिनके भीतर समस्त मानवाधिकार तथा आधारभूत स्वतंत्रताएँ पूरी तरह मूर्त हो सकती हैं।" (धारा-1)

अनुच्छेद-2 : "मानव-अधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रताओं के पूर्ण सम्मान, साथ ही साथ समाज के प्रति जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप में सभी व्यक्तियों का विकास के प्रति दायित्व है, जिसके माध्यम से स्वतंत्र और संपूर्ण मनुष्य होने को सुनिश्चित किया जा सकता है; इसीलिए लोगों को विकास के लिए एक समुचित राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था-क्रम को प्रोत्साहित एवं संरक्षित करना चाहिए।" (धारा-2)

अनुच्छेद-6 : "सभी मानव-अधिकार और आधारभूत स्वतंत्रताएँ अविभाज्य एवं परस्पराश्रित हैं, अत: नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को लागू करने, बढ़ावा देने तथा संरक्षित रखने पर समान ध्यान दिया जाना चाहिए और तुरंत प्रभाव से विचार किया जाना चाहिए।" (धारा-2)

यूनिवर्सल इंस्ट्रुमेंट्स, डिक्लेरेशन ऑन दि राइट टु ड्वलपमेंट, एडॉप्टेड 04 दिसंबर, 1986, जनरल एसेंबली रेजुल्युशन 41/128 (युनाइटेड नेशंस ह्युमेन राइट्स इंस्ट्रुमेंट्स)

संदर्भ सं. 74 :

जी-20 बाली शिखर सम्मेलन में संस्कृति संबंधी प्रस्ताव :

जी-20 डिक्लेरेशन के बिंदु संख्या अड़तालीस में कहा गया है कि "मूलभूत मूल्यों के अतिरिक्त उसके सामाजिक और आर्थिक लाभों के साथ ही हम सतत विकास की सक्षमकर्ता और प्रेरक के रूप में संस्कृति की भूमिका को दृढ़ता पूर्वक स्वीकार करते हैं। हम दीर्घ एवं पुष्ट जीवन-स्रोत के रूप में सांस्कृतिक वैविध्य पर केंद्रित

नीतियाँ विकसित करने और प्रत्येक स्तर पर संस्कृति, कला एवं थाती के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के योगदान को महत्त्व देने वाली समावेशी और न्यायसंगत पारिस्थितिकी को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम आवश्यकतानुसार स्थानीय समुदायों और आदिवासी लोगों सहित अपनी जनता की सांस्कृतिक थाती का सम्मान करेंगे, उसे बचाएँगे और उसका परिरक्षण करेंगे। हम सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था को समृद्ध बनाने हेतु सार्वजनिक प्रयासों तथा प्राइवेट क्षेत्रों के दीर्घकालिक निवेश का समर्थन करते हैं। हम सांस्कृतिक थाती की रक्षा करेंगे, साथ ही सांस्कृतिक संपदा के गैर-कानूनी रूप से लाने-ले जाने के विरुद्ध संघर्ष करेंगे तथा प्रासंगिक यूनेस्को समझौतों व राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार मूल स्रोतीय देशों/सही लोगों तक फिर से पहुँचाने को बढ़ावा देंगे।"
जी-20, बाली लीडर्स डिक्लेरेशन, (बाली, इंडोनेशिया, 15-16 नवंबर, 2022) पृ.16)।

संदर्भ सं. 75

पं. जवाहरलाल नेहरू के पाँच सूत्र :

तत्कालीन 'नेफा' में असम के राज्यपाल के सलाहकार वेरियर एल्विन की पुस्तक, 'फिलासफी फॉर नेफा' के दूसरे संस्करण की भूमिका (9 अक्तूबर, 1958) लिखते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पाँच सूत्र प्रस्तुत किए थे-

1. लोगों को अपनी प्रतिभा के सहारे प्रगति करनी चाहिए। उन पर हमें कुछ थोपना नहीं चाहिए। उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए। जनजातियों के भूमि और वन के संबंध में प्राप्त जनजातीय अधिकारों का हमें सम्मान करना चाहिए।
2. उनके ही लोगों के बीच से एक टीम को, प्रशासन और विकास-कार्य के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। नि:संदेह आरंभ में कुछ तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से लाना चाहिए, तो भी इन क्षेत्रों में बहुत अधिक बाहरी लोगों को नहीं लगाना चाहिए।
3. हमें इन क्षेत्रों में योजनाओं का अधिक बोझ नहीं लादना चाहिए। हमें इनके सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता की भावना से नहीं, बल्कि सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए।
4. हमें सांख्यिकी या खर्च किए गए धन के आधार पर उपलब्धियों का आकलन नहीं करना चाहिए, वरन मानवीय गुणवत्ता की प्राप्ति के आधार पर परिणाम का मूल्यांकन करना चाहिए।
5. माता प्रसाद, "परिशिष्ट" *मनोरम भूमि अरुणाचल* (दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1995), पृ.298

संदर्भ

[1] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, "उद्घाटन भाषण" *हिंदी संत साहित्य में श्रमण साहित्य का योगदान,* संपा. प्रेमचंद्र जैन (नई दिल्ली, वीर सेवा मंदिर, द्वितीय संस्करण 2014), पृ. 45-46

[2] आचार्य द्विवेदी, *हिंदी संत साहित्य में श्रमण साहित्य का योगदान*, (संदर्भ सं. 1 देखें), पृ.48

[3] उषा पुरी विद्यावाचस्पति, *भारतीय मिथक कोश,* (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चौथा सं 2004), पृ. 216-17

[4]. जोराम यालाम नाबाम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण: 2022), पृ.73

[5] जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.31

[6] - जोराम. "तानी द र्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 31

[7]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 31-32

[8]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.33

[9]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.37

[10]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38 .
[11]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.32
[12]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.33
[13]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34
[14]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34-35
[15]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34
[16]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.44
[17]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[18]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.46
[19]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[20]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45-46
[21]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[22]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[23]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[24]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[25]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 45
[26]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[27]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[28]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.48
[29]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[30]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.75
[31]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.76
[32]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.34
[33]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 35
[34]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.35
[35]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.20
[36]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38
[37]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.40
[38]. जोराम. "तानी दर्शन", तानी कथाएँ, (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.71
[39]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.59
[40]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.59
[41]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.63
[42]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38
[43]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.72
[44]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.74
[45]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.75
[46]. जोराम, "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.47-48

[47]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.71
[48]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.48
[49]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.48
[50]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.49
[51]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.41
[52]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.45
[53]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.46
[54]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.44
[55]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[56]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[57]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.38
[58]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.52
[59]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.53
[60]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.53
[61]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं देखें), पृ.55
[62]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.19
[63]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ 30
[64]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ 30
[65]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ. 29
[66]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.30
[67]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.39
[68]. जोराम. "तानी दर्शन", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.40
[69]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.21
[70]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.20
[71]. जोराम. "भूमिका", *तानी कथाएँ,* (संदर्भ सं 4 देखें), पृ.21
[72]. आलेख के परिशिष्ट में उपलब्ध।
[73]. आलेख के परिशिष्ट में उपलब्ध।
[74]. आलेख के परिशिष्ट में उपलब्ध।
[75]. आलेख का परिशिष्ट देखें।

*(**लेखकीय परिचय:** प्रो. देवराज का मणिपुरी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वह एक गंभीर साहित्य-चिंतक, भाषाविद् एवं आलोचक हैं। देवराज की मणिपुर पर केंद्रित कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मोबा. 7599045113, ईमेल : dr4devraj@gmail.com)*